[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3622

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

विभिन्न शैली गत वर्ण विधान

विपिन कुमार
शोधार्थी
देवी अहिल्याबाई विश्वविद्यालय इन्दौर (म०प्र०)

चित्र बनाते समय कलाकार इस बात का ध्यान रखता है कि विषयानुरूप कौन से रंग लगाने चाहिये। लघु चित्रों में प्रयुक्त रंग अधिकांशतः चटकीले है। राजस्थानी, जैन तथा पाल शैली के चित्रों में अधिकांश खनिज रंगो का प्रयोग किया गया है। इसका कारण तत्कालीन रंगो की अपलब्धि भी है। गहरे नीले, लाल और पीले रंगो का प्रयोग चित्रों में बहुतायत से मिलता है। राजस्थानी चित्रों की वर्णिका शोख और चटकीले रंगो की है। क्योंकि आवागमन के साधन कम होने की वजह से ये चित्र वाह्य प्रभाव से मुक्त है। मुगल शैली के चित्रों में फारस की कोमल रंगो वाली पद्वति दिखाई देती है। राजस्थानी की आपेक्षा रंगो में चटकीलापन कम है। वस्त्रों आभूषणों में उचित रंगो का प्रयोग किया गया है। जामा, पटका, पाजामा और पगड़ी में भिन्न–भिन्न रंग प्रयोग किये गये है।

पहाड़ी शैली के चित्रों में मुगल, राजस्थानी शैली और कशमीर शैली का मिला–जुला प्रभाव है। जिसका उल्लेख भारत की चित्रकला पुस्तक में राय कृष्ण दास ने किया है। यही कारण है कि इन चित्रों में रंगो की कोमलता और रेखाओ का प्रवाह अत्यन्त श्रेष्ठ है। रंगो की कोमलता और आर्कषण में कागड़ा शैली के लघु चित्र सर्वश्रेष्ठ कहे जाते है। वृक्षों की हरीतिमा दूर तक फैली पीली पहाड़ी प्रदेश, उन पर बनी हुई श्वेत अट्टालिकाऐं, उड़ते हुये रंगीन पर्दे और इस परिवेश में विचरण करती, क्रीड़ा करती आकृतियाँ अद्भुत रोमांच उत्पन्न करती है। आकृतियों रंग–बिरंगे परिधान लंहगे और पारदर्शी दुपट्टे हल्के रंग में अत्यन्त आकर्षण उत्पन्न करते है।

मुगल चित्रकारों के रंग मीने के समान चमकदार साफ और स्थायी है। कलाकार इन रंगो को अन्य सामग्री के समान ही अपनी देख – रेख में सर्तकता से तैयार कराते थे।

मुगल कला में दो प्रकार के रंगो का प्रयोग हुआ है। प्राकृतिक तथा नकली। प्राकृतिक रंग खनिज एवं वनस्पति है तथा नकली रंग रासायनिक एवं जान्तिविक है सोने, चाँदी तथा टिन का चूर्ण भी गोंद में मिलाकर प्रयुक्त हुआ है। सर्वाधिक प्रयोग खनिज रंगों का हुआ है। रंगीन मिट्टी तथा पत्थरों से भी रंग प्राप्त किये गये है। प्रत्येक रंग को खूब अच्छी तरह तैयार किया जाता था। वानस्पतिक रंगों में नील तथा जान्तविक रंगो में कृमिदाना या गुलाबी का प्रयोग होता था। रासायनिक रंगों में ''ईगुंर'' ''सिंगरफ'' एवं ''जंगाल'' का प्रयोग किया जाता था। शंख अथवा जस्ता – भस्म में सफेदा बनाकर धौं के गोंद के साथ लगाते थे। जयपुर में खड़िया तथा सोपस्टोन से भी सफेद रंग बनाया गया है जो कालान्तर में धुँधला हो जाता है। सीसे को फूँककर बनाया गया सफेद रंग जहरीला एवं काला पड़ जाने वाला होता है। वानस्पति रंगो में काला काजल सरसों के तेल से भरे दीपक में कपूर जलाकर काजल बनाया जाता था या सरसों के तेल को जलकर बनाया जाता था। फारस की खाड़ी से हरमुंजी रंग आता था। सिंगरफ से बढ़ियां लाल रंग (हिंगुल, ईगुरा) बनाया गया है। कच्चे सिंदूर में सिंदूरी रंग निकाला गया है उत्तम सिंगरफ यूरोप से मंगाया जाता था। कृमिदाना का निमार्ण लाल रंग के कीड़े से होता था।[1]

लाख का रंग, फलाश अथवा थूहर पर रहने वाले कीडो से बनता था। इसका दूसरा नाम किरमिजि या गुलाली भी है। कीड़ो को रात भर पानी में भिगोकर हलकी आग में उबालते है फिर सुखा देते है, अब इनमें तीन दिन का खट्टा दही मिलाते है इससे एकदम सुर्ख लाल रंग बन जाता है। नीला रंग नील से बनता था जो भारत से बहुत निर्यात होता था, दूसरा रंग लाजवर्दी है। मुगलों का यह बहुत प्रिय रंग था, देवनियर के अनुसार यह बदख्शां (अफगानिस्तान) से आता था। ताम्बे से भी इसे प्राप्त किया जा सकता है यह बहुत कीमती होता है। कलान्तर में 10वीं शताब्दी में फ्रांस में सोडा, चीनी मिट्टी तथा गन्धक के योग से नकली लाजवर्दी बनने लगी।[2]

पीले रंगो में सर्वश्रेष्ठ ''प्योड़ी'' या ''गोगिली'' है। यह मिर्जापुर में बनता था। आम की पत्ती खिला देने से गाय का मूत्र बहुत पीला हो जाता है इसे गर्म करके गाढ़ा कर लेते थे फिर सुखाकर पीस लेते थे। पीली मिट्टी (रामराज) भी प्रयुक्त की जाती थी। सारे खां नामक पेड़ के गोंद से हल्का पीला रंग प्राप्त किया जाता था। हरताल से बने पीले रंग का भी प्रयोग होता था। हरा भाटा ताम्बे से ही प्राप्त किया जाता था जो नीले का रूपान्तर है जंगाल का प्रयोग मुगल कलाकारों ने खूब किया। इसे ताम्बे पर सिरके की प्रतिक्रिया से प्राप्त किया गया। यह कलान्तर में बहुत खराब हो जाता है तथा कागज को गला देता है। हरताल के साथ नील मिलाकर हरा रंग बनाया जाता था। सिंगरफ, तथा नील मिलाकर गहरा बैगनी, सफेदा तथा सारे खाँ से गुलपुम्बद, नील तथा कृमिदाना से सोसनी, लाल तथा पीले से सोनजर्द, सिंदूर तथा पीले से नारंगी और कागज तथा सफेदा मिलाकर फाख्ताई रंग बनाया गया है। सुनहरे रंग का प्रयोग प्राचीन भारत में नहीं हुआ। अनुमानतः यह विदेशी प्रभाव से अपभ्रंश कला में आरम्भ हुआ होगा। सुवर्ण के चूर्ण को हिलकारी (सोना) कहते है। खरल में गोंद या शहद लगाकर सोने के वर्क (तबक)

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

चिपका देते थे। इन्हें थोड़ी बालू तथा पानी डालकर खरल करते और पानी को ठहरा ठहराकर निकालते जाते थे। इस प्रकार पानी में घुल घुलकर पिसी हुई बालू अलग हो जाती थी और स्वर्ण चूर्ण बचा रहता था। इसमें सरसे मिलाकर प्रयोग करते थे। सस्ते चित्रों में पीतल के चूर्ण का भी प्रयोग हुआ है आगे चलकर इनके स्थान पर अपभ्रक अथवा टिन के चूर्ण का भी प्रयोग होने लगा इसमें कतीरे का गोंद मिलाते है प्योड़ीं तथा सफेदे में धौ का गोंद तंथ शोख रंगो में बबलू का गोंद मिलाते है। मुगल कला की भांति राजस्थानी चित्रकारों ने रंगो का प्रयोग किया है। राजस्थानी रंग अधिक चटकीले और शोख है साथ ही विषय, भाव और रस के अनुसार रंगों का प्रयोग किया है। राजस्थान में भी स्थानीय प्रभाव रंगो में स्पष्ट है।[3]

पहाड़ी कलम के चित्रों में लाल, पीला, नीला और काला रंग समान रूप में प्रयुक्त हुआ है रंगो का उजालापन आज भी देखते बनता है। भारतीय चित्र परम्परा के उन्नायक सुप्रसिद्ध चित्रकार असितकुमार हालदार ने लाल, नीला और सफेद रंग को क्रमशः रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण का बोधक बताया है। पहाड़ी चित्रकला के रंग इस प्रकार तीनों गुणों को समाहित किये हैं।

बसौली के चित्रकारों का रंग विधान और सज्जा सर्वथा अपने ढ़ग की है किन्तु बसौली के कलाकारों का उस ओर विशेष ध्यान रहा है। मुगल, कागड़ा, गढ़वाल या काश्मीरी आदि चित्र शैलियों की अपेक्षा गुजराती कलम से बसौली की चित्रशैली की अधिक घनिष्ठता बतायी जाती है। मुगल शैली के कलाकारों ने जिन संविधानों के माध्यम से अपनी कला को समकाया, बसौली के कलाकार उनसे सर्वथा अलग रहे।

कागड़ा शैली का सौन्दर्य उसकी रेखाओं में है किन्तु बसौली शैली का आकर्षर्क उसकी रंग–योजनाओं में निहित है। कलाकार ने उन्मुक्त रूप से पीले तथा लाल रंग का प्रयोग किया है बसन्त को प्रेमियों की ऋतु भी कह सकते है। अतः पीला रंग प्रेम में भी सहायक है। नीला रंग घनश्याम एवं श्यामधन दोनों का प्रतीक है साथ ही श्रृंगार का भी। लाल रंग अनुराग को व्यक्त करता है। ये सभी रंग बसौली शैली में अंकित विषयों के अनुरूप ही प्रयुक्त हुए है। गीत–गोविन्द, रस–मंजरी चित्रों में पीले,लाल,नीले,भूरे, हरे तथा बादामी रंगो के सपाट धरातल एक विचित्र मायालोक की सृष्टि करते है। इनमें सर्वण तथा रजत का प्रयोग किया गया है। कहीं कहीं आभूषणों तथा परिधानों में सुवर्ण तथा भवनों एवं वस्त्रों में रजत का प्रयोग किया गया हैं। कहीं कहीं आभूषण उभरे हुए श्वेत रंग में चित्रित्र हुए है।[4]

नायिका भेद चित्र श्रृंखला में कृष्णामिसारिका की अत्यन्त श्रेष्ठ अभिव्यक्ति इस चित्र में है काली रात की पृष्ठभूमि पर अस्त व्यस्त वस्त्रों में नायिका, सखी का सहयोग और दूर वृक्षों के मध्य प्रतीक्षारत नायक कृष्ण। वास्तु कला की श्रेष्ठ अंकल और दूसरी ओर के वृक्ष एक विशिष्ट सन्तुलन उत्पन्न कर रहे है ऊपर आलंकारिक बादलों की रेखा विशिष्ट है। सचमुच इन चित्रों में रंगो के माध्यम से ही नाटकीय क्षणों की अभिव्यंजना की गयी है जिस प्रकार प्रभू से मिलने की प्रबल अभिलाषा भक्ति काव्य में व्यक्त हुई है उसी प्रकार कलाकार के हृदय की उत्कृष्ट इच्छांए रंगो के माध्यम से बसौली की चित्रशैली में व्यक्त हूई है।

तकनीक और अंकन की दृष्टि से ये चित्र कागड़ा से भिन्न हैं। चम्बा शैली में बारिक कोमल रेखाओं का प्रयोग है इन रेखाओं में जहंगीरकालीन मुगल शैली की विशेषतांए दिखाई पड़ती है रेखांए लाल या काले रंग से बनाई गई है।

रंग चम्बा शैली के चित्रों में बसौहली के अपेक्षा अधिक संगत और मिश्रित रंगो का प्रयोग है परन्तु आकृतियों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये उनके वस्त्र चटक विरोधी रंगों से भी बनाये गये है। चित्रकारों में नीले रंग के प्रति आकर्षक भी दिखाई पड़ता है। लाल, पीले रंग का प्रयोग सामान्य है।[5]

निष्कर्ष–

रूपरेखा, वर्ण और वर्तना का महत्व सभी में है किन्तु लघु चित्रों में तो इन तत्वों का विशेष महत्व है। छोटे से चित्र में भिति चित्रण की अपेक्षा अधिक सतर्कता एवं सावधानी उपेक्षित है। कलाकार सूक्ष्म अकंन करके चित्र में प्रमुख तत्व वर्ण का उचित सन्तुलित प्रयोग करता है। उसकी थोड़ी सी असावधानी चित्र के आकर्षण को समाप्त कर सकती है। अधिकाशतः वर्णो के आधार पर ही विभिन्न शैलीगत पहचान हो पाती है, कई बार कलाकारों को चित्रों की कई कई प्रतिकृतिंया तैयार करनी पड़ती थी। रंगो को देखकर दूसरी कृति बनाने में आसानी होती थी जिस चित्र में रंग लगाकर रखते थे वह मास्टर कापी कहलाती थी।

रंगयोजना की दृष्टि से विभिन्न शैलीगत अन्तर सरलता से दृष्टिगोचर होते है। मास्टर कापी की परम्परा सभी शैलियों में कलाकारों ने अपनायी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

1 *भारतीय चित्रकला का इतिहास – डा० अविनाश बहादुर वर्मा – पृष्ठ सं० 174*
2 *कला और कलम – डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल – पृष्ठ सं० 137*
3 *कला और कलम – डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल – पृष्ठ सं० 138*
4 *Laughinh colour by Mulk Raj Anandi the times of Indian Annual 1966. P.51.*
5 *पहाड़ी चित्रकला – किशोरी लाल वैध पृष्ठ सं० 116*